International Journal of Education and Science Research Review
E-ISSN 2348-6457
Volume-9, Issue-5 Sep - Oct - 2022
P-ISSN 2349-1817
www.ijesrr.org
Email- editor@ijesrr.org

# श्री अरविन्द घोष तथा स्वामी विवेकानन्द जी के तत्व मीमांसा संबंधी विचारों का तुलनात्मक अध्ययन

**Dr. Treta Devi**
Assistant Professor
Astron College of Education
CCS University Meerut

**Dr. Jitendra Singh**
Associate Professor
Astron College of Education
C.C.S. University Meerut

**सार–**
वर्तमान शिक्षा जगत को द्वन्द की स्थिति से उबारने में हमारा प्राचीन वाड़मय उपयोगी हो सकता हैं हालाकि, शिक्षा दर्शन के दृष्टिकोण से अब तक जितने अनुसंधान हुए हैं, उनसे सहज ही यह भ्रान्ति होती है कि शायद हमारा जीवन दर्शन व साहित्य ऐतिहासिक विवेचना की वास्तुमात्र है। प्रस्तुत अध्ययन में श्री अरविन्द घोष तथा स्वामी विवेकानन्द के तत्व मीमांसा सम्बन्धी विचारों का वर्तमान सन्दर्भ में एक अध्ययन करने का प्रयास किया गया है। इन दोनों महापुरुषों का शैक्षिक दर्शन शोधकर्ता को इसलिये प्रभावपूर्ण प्रतीत हुआ क्योंकि इनका जीवन दर्शन भी उच्चतम उपलब्धियों से अनुप्राणित था। ये दोनों महापुरुष अपने जीवन–दर्शन के सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक पक्षों में एक सामंजस्य बनाकर चलते थे। इनका दर्शन वैयक्तिक उपलब्धियों की सीमा से उन्मुक्त था, इसीलिये इन लोगों ने सामान्य मानव में ईश्वर व परमसत्ता के दर्शन किये। इन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में जो अतुलनीय कार्य किए, उनके लिये सम्पूर्ण शिक्षा जगत इनका सदैव ऋणी रहेगा। इन सभी ने अपने सम्पूर्ण जीवनकाल में मानवजाति को बलवान बनने का उपदेश दिया था। इन महापुरुषों से पूर्ण भारत की महान ज्ञान परम्परा एक सीमा में आबद्ध थी। उसकी प्रगति अंग्रेजों के मोह जाल, पण्डितों के तर्क–कौशल और वाक–चातुर्य में फँस गयी थी। परन्तु उन्होंने उस अलौकिक ज्ञान को जनता–जनार्दन के समक्ष जनसाधारण की भाषा में प्रस्तुत किया था। जिस युग में अरविन्द एवं विवेकानन्द का अवतरण हुआ, उस समय समस्त संसार में ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में प्रगति करने की होड़ लगी हुयी थी। एक ओर जहाँ विज्ञान जगत में अनेक आश्चर्यजनक आविष्कार हुये, वहीं दूसरी ओर धर्म और दर्शन के क्षेत्र में चतुर्मुखी विकास करने की सम्भावनायें बन गयीं।

**श्री अरविन्द के तत्व मीमांसा संबंधी विचार–**
श्री अरविन्द प्राचीन भारतीय ऋषि–परंपरा के आधुनिक उन्नायक के रूप में प्रसिद्ध है। उन्होंने अपने रहस्यमय व्यक्तित्व द्वारा एशिया की आत्मा का संसार को साक्षात्कार कराया और यही कारण है कि प्राचीन योग के सहज साधक और आत्मद्रष्टा के रूप में लोग उनका समादर करते है। श्री अरविंद के इस दिव्य व्यक्तित्व ही प्रशंसा करते हुए जो खेला ने कहा है, ''देखों,वह अरविंद घोष आते है। उनमें एशिया की प्रतिभा और योरोप की प्रतिभा का वह पूर्णतम सामंजस्य आज प्राप्त हुआ है जिसकी दीर्घकाल से प्रतीक्षा हो रही थी।'' उन्होंने भावी संतान के लिए जिन गौरवमयी परंमपरा का निर्माण किया है वह विशाल और समृद्धिशालिनी है। उन्होंने जो कुछ कहा या लिखा है वह उच्चप्रेरणा, सहज ज्ञान एवं क्रांतिदर्शिता से ओतप्रोत है।

**निरपेक्ष और ईश्वर–**
श्री अरविंद का दर्शन न तो अंध श्रद्धायुक्त है और न अज्ञेयवादी। उसके अनुसार परम्ब्रह्म न तो पूर्णतया ज्ञात ही है और न पूर्णतया अज्ञात। जैसे–जैसे हम अपने अनुभव में बढ़ते है हम परब्रह्म को अधिकाधिक जानते जाते है। इसी कारण दर्शन में व्यवस्था बनाना अदार्शनिक है। श्री अरविंद ने ज्ञान को उन्मुक्त और विकासमान छोड़ दिया है और उसको एक बन्द तथा कठोर व्यवस्था में सीमित नहीं किया है। वह व्यवस्थाकार नहीं है बल्कि एक

दृष्टा है, सदैव अधिकाधिक सर्वांग अनुभव के लिये प्रत्यनशील और सदैव निरीक्षण, परीक्षण, तुलना, उन्नति और परिवर्तन तक के लिए सन्नद्ध है।

श्री अरविंद के अनुसार ''सभी सिद्धान्त जो कि संभूति को उसके स्वंय के लिए पर्याप्त ठहराते है अर्द्ध सत्य है, जो कुछ वे देखते और स्वीकार करते है उस पर एकांगी मनन से उपलब्ध अभिव्यक्ति के ज्ञान के लिए वे प्रमाणिक है, परंतु अन्यथा केवल इसलिये प्रमाणित है कि सद संभूति से पृथक नहीं है। बल्कि उसमें उपस्थित है उसको बनाता है उसके प्रत्येक सूक्ष्मतम् अणु और उसके असीम विकास और विस्तार में निहित है।'' परिवर्तन को सत् मानने वाले सिद्धान्तों का सत्य संभूति में है परंतु इस सत्य को पूर्णतया जानने के लिए सत् का ज्ञान भी उतना ही आवश्यक है। निरपेक्ष सद्वस्तु एक सर्वातिशायी सद्वस्तु सच्चिदानन्द है परंतु उसी समय वह एक विश्वगत सद्वस्तु संभूति भी है। श्री अरविन्द के शब्दों में ''सत् एक है परंतु यह एकता असीम है और स्वंय का एक असीम बहुत्व या विविधता रखती है। एक सब कुछ है, वह केवल एक सारभूत सत्ता ही नहीं बल्कि समग्र सत्ता है।''

उपनिषदों के समान ही अरविंद ने परम् सदवस्तु को सच्चिनान्द माना है। निरपेक्ष सद्वस्तु सच्चिदानन्द है। परंतु फिर भी श्री अरविंद के अनुसार ''सच्चिदानन्द त्रिविध पहलू के साथ एक है। परम में तीन, तीन नहीं बल्कि एक है, सतचिद है, चिद आनंद है और इस प्रकार वे अपृथंक है। केवल अपृथंक ही नहीं बल्कि इतना अधिक एक दूसरे से सम्बन्धित हैं जैसे कि वे बिल्कुल भिन्न नहीं है'' बल्कि पुनः ब्रह्म आत्मा, पुरूष और ईश्वर है। ये प्रत्यय संबोधि के मूल से निकले हैं इनमें एक विस्तृत सूक्ष्मतां है और ये एक ऐसी व्यावहारिक नमनीयता की सामर्थ्य रखते हैं जो कि अस्पष्टता और कठोरता बौद्धिकता दोनों ही बचा जाती है। ब्रह्म निरपेक्ष हैं और सभी सापेक्षों की आत्मसात कर लेता हैं। वह सबका अन्तरात्मा हैं। वह अनेक में एक, अचेतन में चेतन है। वह कारण है और कार्य तथा कार्य–कारण नियम भी। वह देश है और जो कुछ में वह भी है। वह विषयी और विषय, विचार तथा विचारक दोनों ही हैं। ''समस्त सद्वस्तुयें और सभी पहलू तथा समानतायें भ्रम नहीं ब्रह्म है। ब्रह्म निरपेक्ष है, सर्वातिशायी और अप्रगट, विश्व से पूरे का सत जो कि विश्व और विश्वात्मा का पालन करता और समस्त जीवों को धाण करता है, परंतु वहीं प्रत्येक व्यक्ति की आत्मा है, आत्मा अथवा चैत्य पुरूष ईश्वर का एक नित्य अंश है। वह उसकी परम प्रकृति अथवा चेतना शक्ति ही हैं। जो कि जीवित प्राणियों के संसार में जीवित प्राणी बन गयी है।

परम ब्रह्म अनिर्वचनीय और अचिन्तनीय है। जैसे कि श्री अरविंद ने कहा है ''वह सत् अथवा असत् नहीं बल्कि कुछ ऐसा हैं जिसके सत् अथवा असत् प्रारम्भिक चिन्ह है, आत्मा अथवा अनात्मा या माया नहीं, व्यक्तित्व अथवा निरव्यक्तित्व नहीं, गुण अथवा निर्गुण नहीं, न चेतना और न निरचेतना, न आनन्द और निरानन्द, न पुरूष न प्रकृति न देवता न मानव न पशु न बंधन न मोक्ष, परंतु ऐसा कुछ जिसके ये सब प्रारंभिक अथवा गौण, सामान्य अथवा विशेष संकेत है, फिर भी जब हम कहते हैं कि परब्रह्म यह अथवा वह नहीं हैं तो हमारा तात्पर्य यह है कि वह अपने तत्व रूप में इस अथवा उस संकेत अथवा संकेतों के समूह में सीमित नहीं किया जा सकता, एक अर्थ में ब्रह्म यह सब कुछ हैं और यह सब परब्रह्म।

श्री अरविंद के अनुसार दर्शन और धर्म के चरम लक्ष्य एक ही सद्वस्तु के दो रूप मात्र है। इस प्रकार ईश्वर सर्वव्यापी सर्वज्ञ ओर सर्वशक्तिमान है। ''सर्वव्यापी क्योंकि सभी रूप, देश और काल के उसके स्वंय अपने विस्तार में उसकी अपनी गति की शक्ति से उत्पन्न उसकी चेतना सत्ता के रूप है। सर्वज्ञ क्योंकि सभी वस्तुयें उसकी चेतना सत्ता में रहती है उसके द्वारा बनायी जाती है, और उसी के अधिकार में रहती है। सर्वशक्तिमान, क्योंकि यह सर्वाधिकारी चेतना ही एक सर्वाधिकारी ष्षक्ति और सर्वसूचक संकल्प है। ईष्वर अन्तःस्व और अतिषयी व्यक्तिगत और विरवगत, समस्त वस्तुओं का सृष्टा, पालक और संहारक है। वह सहायक निर्देशक, प्रिय

व सर्वप्रेमी है। वह पृथक है परन्तु फिर भी समस्त जीवों से एक है। उसके बाहर कुछ भी नहीं है। ईश्वर साकार, मुक्त, पूर्ण नित्य, और सभी की आत्मा है। वह सत् भी है और संभूति भी। संसार का विकास उसके विविध पहलुओं की अभिव्यक्ति है। यह विश्व का भी सर्वग्राही है। वह विषयी भी है और विषय भी। वह उपासना, प्रेम और रहस्यात्मक मिलन का विषय है। उसमें सत्यशीलता, कृपालुता, ज्ञान और आनन्द जैसे गुण है। वह दुःख अशुभ, कष्ट, अज्ञान और सीमितता आदि से मुक्त है वह आत्मचेतन परम पुरूष है।

**जगत–**

श्री अरविंद के अनुसार विश्व, असीम देश और नित्यकाल में स्वंय को उड़ेलती हुई असीम अस्तित्व, असीम गति और अपरिमित क्रिया की एक असीम शक्ति है। जगत एक शक्ति की सृष्टि है। विज्ञान, दर्शन बुद्धि और सम्बोधि द्वारा इस सत्य का समान रूप से समर्थन किया गया हैं। एक असीम चेतना शक्ति समस्त वस्तुओं के सृष्टा, पालक व और नाशक हैं गुण और मात्रा मे भेद केवल इस शक्ति के एकत्रिकरण की तीव्रता की विभिन्नता के कारण है। वह चेतना शक्ति अविभाज्य है और मानसिक चेतना के समान प्रत्येक वस्तु में स्वयं के एक समान अंश में नहीं बल्कि प्रत्येक वस्तु में एक साथ और एक ही समय में पूर्ण रूप से उपस्थित हैं ''क्रिया की शक्ति का रूप प्रणाली और परिणाम अगणित प्रकार से परिवर्तन होता रहता है, परंतु नित्य मौलिक असीम शक्ति सब में वही है।''

''जगत अपने विरोध में अपना साक्षत्कार करने के लिए सच्चिदानन्द का आत्मबोध है। सच्चिदानन्द असीम सत् चिद् आत्म पालक शक्ति आनंद और एकता हैं दूसरी और जगत में हम असीम आत्मायें है। सीमित चेतनायें परमाणुओं की व्यवस्था सुख–दुख और तटस्था की एक अस्त–व्यस्त गति और अन्त में शक्तिओं और जीवों में असामंजस्य पाया जाता है। ये दोनों ही उसके दो रूप है। जगत अपने विरोधी में साक्षात्कार करने के लिए सच्चिदानन्द के आंनद की अभिव्यक्ति है। सम्पूर्ण सृष्टि और संभूति इस आत्माभिव्यक्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

**जीवत्मा का स्वरूप–**

श्री अरविंद के अनुसार व्यक्ति की आत्मा अमर है अतः जीवात्मा का पुर्नजन्म एक निश्चय है। पुर्नजन्मों द्वारा व्यक्ति की अमर आत्मा दुर्भेद्य अचेतन की दुर्भेद्यता को कम करके दिव्यता की अति चेतना की ओर आरोह करने की प्रयत्न करती हैं। जीवात्मा का वास्तविक निजत्व निरन्तर बना रहता है। अपरा अथवा निम्न प्रकृति से मुक्ति पाकर भी यह नष्ट नहीं होता है।

इस स्तर पर केवल अहं नष्ट होता है। जब अहं पूर्ण निजत्व व्यक्ति में सारे संसार से पृथकत्व की भावना उत्पन्न करता है तो यथार्थ व्यक्ति विश्व–आत्मा के जीवन से जुड़ा होता हैं और उसे यह ज्ञान रहता है कि वह अतिवैश्वपरात्पर ईश्वर। सुपरा कास्मिक ट्रान्सीडेंट डिवाइन से पृथक नहीं किया जा सकता। इस प्रकार जीवात्मा शाश्वत रूप से पूर्ण और बंधन युक्त हैं। यह जन्म–मरण, विकास आदि से परे है। यह परमात्मा ही हैं किंतु एक विशेष स्थिति में। इस प्रकार यह परमात्मा से भिन्न भी है क्योकि उसके अस्तित्व की अनेक स्थितियों में से एक है। इस प्रकार सार तत्वो में परमात्मा के एकाकार होते हुये भी रूप और कार्य में उससे भिन्न हैं प्रत्येक जीवात्मा दिव्य शक्ति क्रिया का केन्द्र है। उसकी अभिव्यक्ति का माध्यम हैं। विकास प्रक्रिया में जिस चीज का विकास होता है वह है प्रत्येक विकासशील संसारिक व्यक्ति के हृदय में रहने वाला वह तत्व जिसे उपनिषदों में चैत्य पुरूष कहा गया है। यह चैत्य पुरूष दिव्य शक्ति स्फूलिंग है जो प्रत्येक देहचारी व्यक्ति में निहित है, और इस जगत में शरीर, प्राण और मनसहित व्यक्ति जो अतिकालिक वैयक्तिक आत्मा का उच्चतम प्रतिनिधि है के विकार का नियंत्रण करता है। आध्यात्मिक अनुभूति प्राप्त कर लेने पर चैत्य पुरूष पुनः वैयक्तिक आत्मा के साथ युक्त हो जाता है। अतः विश्व का परमलक्ष्य हैं आत्म निर्माण अथवा दूसरे शब्दों में अतिमानव का निर्माण।

इस प्रकार व्यक्ति व समाज के सहबंधन को समझा जा सकता है। व्यक्ति जितना ही अपने व्यक्तित्व को ऊँचा उठाता है उतना ही अधिक व्यक्ति व समाज का संघर्ष कम होता जाता है। श्री अरविंद ने जिस ज्ञेयवादी समाज की कल्पना की है उसमें इस प्रकार के संघर्ष की कल्पना भी नहीं की जा सकती है।

**विकास का सिद्धान्त–**

विश्व में व्याप्त दिव्य शक्ति प्रगतिशील अवधारणा भी अरविंद के ज्ञेयवादी दर्शन का आधार हैं जिसका केन्द्र बिन्दू 'विकास' है। उनके अनुसार इस संसार के समस्त विकासशील प्राणियों का एक ही प्रयोजन और लक्ष्य है– पूर्ण एवं अखण्ड चेतना की उपलब्धि सृष्टि की रचना के 'पीछे परम' चेतना की प्राप्ति ही एक मात्र लक्ष्य है। इसी चेतना के प्रस्फुटित होने को मानसिक विकास कहते है। विकासक्रम के आरम्भिक स्तर पर जड़ पदार्थ से वनस्पति जगत के रूप में प्राण का विकास हुआ इसी विकास के अगले स्तर पर प्राण से पशुमन विकसित हुआ। इसे प्रथम 'चेतन चेतना' कह सकते है। इसी पशुमन या इन्द्रिय मानसिकता से मन अथवा मानव के मन का विकास हुआ, जिसका गुण है तर्क व विचार करना।

चेतना के विकास क्रम की दो विशेषताये हैं– प्रथम– पदार्थ प्राण,मन और बुद्धि इनका अस्तित्व पृथक–पृथक नहीं है। वस्तुतः प्रत्येक अनुवर्ती स्तर अपने पूर्ववर्ती स्तर अपने पूर्ववर्ती स्तर से जुड़ा हुआ है क्योंकि किसी पदार्थ या वस्तु से वहीं चीज उत्पन्न हो सकती है जो उसमें पहले से निहित हो। जड़ पदार्थ से प्राण इसलिये विकसित हुआ क्योंकि वह उसमें पहले से निर्धारित हो। जड़ पदार्थ से प्राण इसलिए विकसित हुआ क्योंकि वह उसमें प्रच्छन्न रूप से विद्यमान था। ऐसे ही प्राण से मन का विकास इसलिए हुआ क्योकि वह प्राण में निहित था। इस प्रकार प्राण और मन दोनों पदार्थ में निहित थे। इसी भाँति बुद्धि और चेतना दोनों प्राण व मन में निहित थे और साथ ही अपने पूर्व–वर्ती स्तर पदार्थ में भी। अतः चेतना अव्यक्त रूप में प्राण और पदार्थ दोनों में निहित थी। ब्रह्मांड की समग्र योजना इसी चेतना इसी अन्तिम सत्य की प्रगतिशील अभिव्यक्ति करता है। श्री अरविन्द इस विकासक्रम को यान्त्रिक नहीं मानते इसे चेतना का चेतन विकास मानते हैं यद्यपि मानव विकास यात्रा को व्यक्ति या समष्टि रूप में अग्रसर कर सकता हैं तथापि इसे गति–विमुख नहीं कर सकता अर्थात् पीछे नहीं लौटा सकता, क्योंकि चेतना का पूर्ण विकास देवी चेतना द्वारा पूर्व निर्दिष्ट होता हैं।

विकासक्रम की दूसरी विशेषता यह है कि प्रत्येक उच्च स्तर पर पहुँचकर विकसित चेतना अपने पूर्ववर्ती और अनुवर्ती स्तरों को अपने ढंग से और अपने नियमों के अनुरूप प्रभावित करता है। जैसे प्राण और पदार्थ का संयुक्त रूप प्राणी है। यह पदार्थ युक्त प्राण पदार्थ से पृथक या भिन्न रूप से कार्य करता है क्योंकि जड़ पदार्थ की भांति यह कठोर यान्त्रिक नियमों से शासित नहीं होता। इसी प्रकार मनुष्य प्राणी प्राणयुक्त और जड़ पदार्थों से भिन्न रूप से कार्य करता है। यही बात बुद्धि युक्त मन के साथ भी है।

विकास की यह प्रक्रिया निरन्तर चल रही है और विकासक्रम में चेतना की ऐसी स्थिति में आना निश्चित है जिसे अतिमानसिक स्तर कहते है। इस स्तर पर पहुंच जाने पर पृथ्वी पर एक नवीन चेतना एक नवीन जाति का उदय होगा। इस उच्च स्तर के कुछ विशेष संकेत हमें सहज ज्ञान अन्तः प्रेरणा और देवी प्रकाश के रूप में प्राप्त होते है। अवतारों को होना भी उस स्तर की एक छवि मात्र स्थिति ही है।

चेतना की इस अति सामान्य स्थिति को प्राप्त करना मानव चेतना के लिय दुर्लभ है। यह हमारी इच्छाशक्ति से परे है। अति मानसिक चेतना केवल अति मानव के ही सहजपूर्ण और षाष्वत अधिकार की वस्तु हैं।परन्तु फिर भी कभी यदि मनुष्य अपनी को और अधिक श्रेष्ठ विकसित और अति चैतन्य बनाये तो अति मनुष्य अपनी वर्तमान चेतना को और अधिक श्रेष्ठ विकसित और अति चैतन्य बनाये तो अति मानव को जन्म देने में समर्थ हो सकेगा।

पूर्ववर्ती स्तरों पर विकास की प्रक्रिया अपनी प्राकृतिक एवं स्वाभाविक रीतियों के अनुसार धीरे–धीरे होती है। किन्तु अब मानव चेतना के स्तर पर यदि मनुष्य चाहे तो अपने विचार और चेतनप्रयास द्वारा अपनी सुव्यवस्थित, प्रबल और प्रयत्ननिष्ठ इच्छा शक्ति द्वारा अति मानव के स्तर पर शीघ्र पहुँच सकता है।

**स्वामी विवेकानन्द के तत्व मीमांसा संबंधी विचार–**

विवेकानन्द वेदान्त दर्शन के अनुयायी थे। वेदान्त के अनुसार विश्व में केवल एक ही तत्व है जिसे ब्रह्म नाम दिया जाता है। सगुण रूप में यही ईश्वर है। ईश्वर ही जगत का सृष्टा है। ब्रह्म के रूप में जगत सत्य है और ब्रह्म से पृथक वह माया एवं मिथ्या है। जगत का ब्रह्म के रूप में देखना ही सही ज्ञान है। मनुष्य शरीर धारण करते हुये जीव कहलाता है, किन्तु यह शरीर नश्वर है एवं परिवर्तनशील है। मूल रूप में विभु में है वही अणु में भी है। इस प्रकार मनुष्य भी मूल रूप से ब्रह्म ही है जो कि मानव में आत्मा कहलाता है। आत्मा के वह ही सब लक्षण हैं जो ब्रह्म के हैं। मानव को यह जानना है कि निरपेक्ष, एक अद्वय ब्रह्म है। इस साक्षात्कार को ही मुक्ति कहते हैं। अन्य दर्शनों के प्रति विवेकानन्द का उदार दृष्टिकोण था, ''वेदान्त के अन्तर्गत सभी सम्प्रदाय आ जाते हैं, हम लोग यह स्मरण कर प्रसन्न होते हैं कि सभी ईश्वर की ओर ले जाते हैं. तथा विश्व का सुधार इस प्रकार निर्भर नहीं करता है कि सभी ईश्वर को हमारी ही आँखों से देखें।''

**परमतत्व–ब्रह्म–**

विवेकानन्द के अनुससार ''वेदान्त का मूल सिद्धान्त यह एकत्व अथवा अखण्ड भाव है। दित्व कही नहीं है, दो प्रकार का जीवन अथवा जगत भी नहीं है। एक मात्र जीवन है, एक मात्र जगत है, एक मात्र सत है। सब कुछ वही एक सत्ता मात्र है। भेद केवल परिमाण का है प्रकार का नहीं।'' उपनिषदों में ब्रह्म का इसी प्रकार उल्लेख किया गया है। विवेकानन्द का भी कहना था ''वेदान्त में वैराग्य का अर्थ है जगत को ब्रह्म रूप में देखना जगत को हम जिस भाव से देखते हैं, उसे हम जैसा जानते हैं। वह जैसा हमारे सम्मुख प्रतिभाव होता है, उसका त्याग करना एवं उसके वास्तविक स्वरूप को पहचाना। उसे ब्रह्म स्वरूप देखों, वास्तव में वह ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। इसी कारण सबसे प्राचीन उपनिषद् में हम देखते है ''ईषावास्यमिंद सर्व यत्विंच जगत्याम् जगत में जो कुछ है वह सब ईश्वर से आच्छन्न है।''

**ब्रह्म और ईश्वर–**

ब्रह्म के सगुण रूप को ईश्वर कहते है। इस प्रकार सगुण व निर्गुण दोनों ही एक ही तत्व के दो रूप है। ''मेरा विचार है कि जिसे तुम सगुण ईष्वर कहते हो वह निर्गुण ब्रह्म ही है, एक ही साथ सगुण भी व निर्गुण ईश्वर भी। हम लोग सगुणीकृत निर्गुण आत्मायें हैं– तुम में से प्रत्येक विश्वात्मा है, प्रत्येक सर्वव्यापक है। ईश्वर एक वृत है जिसकी परिधि कहीं नहीं है और केन्द्र सर्वत्र है। उस वृत में प्रत्येक बिन्दु सजीव, सचेतन, सक्रिय और समानरूप से क्रियाशील है। इन सीमित आत्माओं में केवल एक बिन्दु सचेतन है और वह केन्द्र आगे पीछे गतिशील रहता है जिस प्रकार विष्व की तुलना में षरीर की सत्ता अत्यल्प है उसी प्रकार व ईष्वर की तुलना में समस्त विश्व कुछ नहीं है। जब हम कहते है ईश्वर बोलता है तो इसका अर्थ है वह अपनी सृष्टि के माध्यम से बोलता है। जब हम उसका वर्णन देशकाल से परे कह कर करते है तब हम कहते है कि वह निर्गुण सत्ता है।''

**ईश्वर और आत्मा–**

ईश्वर व आत्मा के सम्बन्धों के विषय मे विवेकानन्द का विचार है– ''ईश्वर के सम्बन्ध में हमारी धारणा हमारी प्रतिच्छाया है।'' वह अपर्णपाद होकर भी सब कुछ ग्रहण करता है, सर्वत्र विचरता है, वह अरूप है, अमर है, शाश्वत है। परमात्मा का तत्व निरूपण हुआ। जीवात्मा जिस प्रकार शरीर का प्रभु है उसी प्रकार परमात्मा जीवात्माओं का प्रभु है। जीव शरीर से मुक्त हो जाये तो पलभर के लिए भी शरीर शरीर नहीं रह पाता। वह

परमात्मा जीवात्मा से अलिप्त हो जाये तो जीवात्मा की स्थिति ही नहीं रह पाती। विश्व सृष्टि विधायक है कालकवलित होने वालों के लिय महाकाल है। मृत्यु तथा जीवन उसकी छायाये मात्र है।''

आत्मा व ईश्वर के सम्बन्ध को उन्होंने विशिष्ट से सामान्य के सिद्धान्त पर स्पष्ट करने का तर्कपूर्ण प्रयास किया है। ''मेरा आशय वही है तो आज का हर शिक्षित स्त्री पुरूष चाहता है अर्थात् लौकिक ज्ञान के अविष्कारों को धर्म क्षेत्र में प्रयुक्त करना। बुद्धि का तत्व है विशेष की सामान्य से, सामान्य के अधिक सामान्य नः सार्वभौम सामान्य से अन्तिम सामान्य, प्रत्येक जो हमारे पास है ऐसी व्यापकतम धारणा सत्ता की धारणा से सम्बन्ध करना है। सत्ता की धारणा है महत्तम व्यापक धारणा है।'' यह सत्ता ब्रह्म है, यह ब्रह्म की आत्मा है, इस प्रकार सब कुछ आत्मा और ब्रह्म ही सिद्ध होता है। उन्हीं के प्रसंग में ही वह सार्थक होता है।

**आत्मा का स्वभाव–**

आत्मा स्वाभाव से मुक्त है। ''किन्तु वह ब्रह्मांड की एक अनन्त सत्ता है। वही सत्ता स्वरूप हम भी है हम भी वह है तुम भी वह हो, उसके अंश नहीं समग्र वहीं।'' आत्मा के जगत में आगमन के प्रयोजन को स्पष्ट करते हुये। विवेकानन्द का विचार है। ''प्रत्येक विकास के पहले एक अन्तरभाव रहता है, प्रत्येक व्यक्त दशा के पहले उसकी अव्यक्त दशा रहती है। मनुष्य इस श्रखंला की एक कड़ी है।' किन्तु जगत में आत्मा स्वंय विकसित नहीं होती है। विकास तो प्रकृति का होता है। आत्मा कार्य–कारण नियम से परे है, ''मनुष्य की आत्मा कार्य–कारण नियम से परे होने के कारण सम्मिश्रण नही है किसी कारण का परिणाम नहीं है, अतः वह नित्यमुक्त है, और नियम के भीतर जो कुछ सीमित है उस सब का शासनकर्ता है, क्योंकि वह सम्मिश्रण नहीं है, इसलिए उसकी मृत्यु कभी न होगी, जब मृत्यु नहीं हो सकती तो उसका जन्म भी नहीं हो सकता, क्योंकि जीवन और मृत्यु एक ही वस्तु की दो अभिव्यक्तियाँ है, अतएव आत्मा जन्म और मृत्यु से परे है।''

**आत्मा और प्रकृति–**

यह आत्मा मनुष्य में बुद्धि के माध्यम से मन और इन्द्रियों के द्वारा जगत का अनुभव करता है। यह सब आत्मा के साधन है, आत्मा इन सब पर शासन करता है। ''वह इन सभी यंत्रों का शासक है, घर का स्वामी है तथा शरीर का सिंहासनारूढ़ राजा है। अहंकार, बुद्धि और चिन्तन की शक्तियां तथा इन्द्रियों उनके यन्त्र, शरीर और यह सब उसकी आज्ञा का पालन करते है, इन सबको प्रकाशित करने वाला वही है'' ''आत्मा का निर्माण भौतिक तत्वों से नहीं हुआ है, यह एक अविभाज्य ईकाई है। इसलिये यह अनिवार्यतः अविनाशी है– इस कारण इसका अनादि और अनन्त होना भी अनिवार्य है। अतः आत्मा अनादि एवं अनन्त है।''

**आत्मा का लक्ष्य–**

इस विषय में विवेकानन्द के विचार उपनिषदों के समान है। ''भारत में विभिन्न सम्प्रदायों में आत्मा का लक्ष्य एक ही प्रतीत होता है। उन सब में एक ही धारण मिलती है और वह है मुक्ति। मनुष्य असीम है। परन्तु अभी जिस सीमा में उसका अस्तित्व है वह उसका स्वरूप नहीं है किन्तु इन सब सीमाओं के मध्य वह अनन्त, असीम, अपने जन्म सिद्ध अधिकार अपने स्वरूप को प्राप्त कर लेने तक आगे और ऊपर रहने के निमित्त संघर्ष कर रहा है।''

ब्रह्म अथवा परमात्मा में तादातम्य की अवस्था ही मोक्ष है। यह प्रत्येक मानव का लक्ष्य है। वेदान्त यही स्थिति प्राप्त करने का उपदेश देता है। एक आत्मा है जो इन सारी चीजों से परे है, जो परिमेय है, जो ज्ञात से और ज्ञेय से परे है। हम उसी के माध्यम से विश्व को देखते हे। एक मात्र सत्य वही है।

**मोक्ष का स्वरूप और साधन–**

शंकराचार्य के समान ही विवेकानन्द ने भी आत्मा की मुक्ति का सर्वोत्तम उपाय ब्रह्म दर्शन में ही माना है। यह आशा और निराशा दोनों ही दृष्टिकोण से परे की स्थिति है। इस स्थिति में मानव में कर्म करने की महती शक्ति

प्राप्त होती है। बहुत्व में एकत्व ही मुक्त पुरूष की पहचान है। इस प्रकार देखना ही अमरत्व प्राप्त करना है। शरीर नाशवान है।

**जगत–**

शंकराचार्य के समान ही विवेकानन्द ने जगत को माया कहा है। यह जड़ जगत ब्रह्म का अध्यारोप मात्र है। देशकाल निमित्त में से होकर ब्रह्म स्वयं जगत बन जाता है। यह प्रश्न स्वविरोधी है कि पूर्ण ब्रह्म से जगत किस प्रकार उत्पन्न हुआ, क्योंकि इस प्रश्न में ब्रह्म और जगत को दो स्वतंत्र सत्ताएं माना गया है, जब कि वास्तविकता ऐसे नहीं है। एक मात्र ब्रह्म ही सत्य है और वह देशकाल में जगत प्रतीत होता है। जगत को यह ब्रह्मरूप में देखना ही मुक्ति है। इस प्रकार मायावाद पलायन नहीं सिखाता है। वास्तव में माया संसार की गति का तथ्यात्मक वर्णन है। ''इस प्रकार हम देखते है कि माया की व्याख्या करने के निमित कोई सिद्धान्त नहीं है। वह संसार की वस्तु स्थिति का वर्णन मात्र है। विरोध ही हमारे अस्तित्व का आधार है। सर्वत्र इन्हीं प्रचंड विरोधों के माध्यम से हमें जाना होगा। जहाँ शुभ है वहीं अशुभ भी होगा एवं जहां अशुभ है वहाँ शुभ भी होगा। जहाँ जीवन है वहीं मृत्यु छाया की भाँति उसका अनुसरण कर रही है। जहाँ सुख उत्पन्न करने वाली शक्ति विद्यमान है दुःख देने वाली शक्ति भी वहीं छिपी है, अतः वेदान्त दर्शन आशावादी भी नहीं है और निराशावादी भी नहीं है, वह तो दोनों ही वादों का प्रचार करना है, सारी घटनाएं जिस रूप में होती है, वह उन्हें सब उसी रूप में ग्रहण करता है।'' अतः माया को जान लेने से ही माया से परे पाया जा सकता है।

**निष्कर्ष–**

अतिमानव का अविर्भाव विकास की एक अनिवार्यता हैं इसी कारण अति मानव का उदय होना भी अनिवार्य है। क्योंकि उसी में अतिमानस का अवतरण होना है। अतिमानव अवतार की तरह किसी मानव विशेष में किसी निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति हेतु अवतरित नहीं होता है वरन यह विश्व की प्रवृत्ति में तान्त्रिक परितर्वन करने हेतु बिना किसी विशेष उद्देश्य के एक उच्च जातियों के प्राणियों के सदस्य के रूप में आता है। अतिमानव एक व्यक्ति के रूप में नहीं वरन् अतिमानवों की एक जाति के रूप में आता है। श्री अरविन्द कहते हैं कि सत् को प्रमाणित करने की आवश्यकता नहीं हैं। क्योंकि हम उसमें निवास करते हैं अतः मानव चेतना का निश्चेतना में विस्तार सम्भव है। आधुनिक मनोविज्ञान भी यही मानता जा रहा है कि मानवता में विश्व चेतना की सम्भवना है। मानव चेतना का विश्व चेतना का सम्बन्ध का योग द्वारा ही संभव है। उपरोक्त दोनों दार्शनिकोंकी तत्व मीमांसा की अवधारणा से एक तथ्य स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। कि दोनों ही पूर्ण और प्राच्य, आदि और वर्तमान के स्वस्थ समंवय के पोषक है। इसके वर्तमान में इनकी प्रासंगिकता अत्याधिक बढ जाती है।

**संदर्भ ग्रन्थ सूची–**

मल्लिसेन — स्यादवाद मंजरी (हेमचन्द्र की टीका के सहित) चौखंबा संस्कृत सीरीज, वाराणसी।

राधाकृष्णन सर्वपल्ली — उपनिषदों की भूमिका, भारतीय दर्शन, प्राच्य धर्म और पाश्चात्य विचार, भगवदगीता राजपाल एण्ड सन्स, देहली।

शर्मा रामनाथ — भारतीय दर्शन के मूल तत्व केदार नाथ राम नाथ, मेरठ। भारतीय शिक्षा दर्शन विनोद पुस्तक मन्दिर समकालीन भारतीय दर्शन, नीतिशास्त्र की रूपरेखा, धर्म दर्शन, तर्क दर्शन शास्त्र, समकालीन दर्शन केदार नाथ राम नाथ मेरठ

| | |
|---|---|
| शर्मा श्री राम | सांख्य दर्शन, न्याय दर्शन, वैशेषिक दर्शन, योग दर्शन, वेदान्त दर्शन संस्कृति संस्थान–वेदनगर, बरेली। |
| सूरज मल | ज्ञान रत्नाकर |
| मिमाणी | दर्शनतत्वरत्नाकर (द्वितीय भाग) |
| सैयदन के0जी0 | भारतीय शैक्षणिक विचारधारा, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ। |
| सूर्य नारायण शास्त्री | ईश्वर कृष्ण की सांख्यकारिका का अंग्रेजी अनुवाद मद्रास विश्वविद्यालय। |